

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 2: दिव्यता और दिव्य सेवा

11 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



जब बालक शुकदेव संन्यास-मार्ग की ओर घर छोड़कर चल पड़ते हैं, तब वियोग से व्याकुल व्यास जी उन्हें पुकारते हैं — “हे पुत्र!” — और उनके स्थान पर उत्तर देते हैं वे वृक्ष, जो शुकदेव की उपस्थिति से ओतप्रोत थे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। प्रथम अध्याय में नैमिषारण्य वन के ऋषियों ने पूज्य सूत जी के समक्ष तीन महान प्रश्न रखे थे। अब, इस दूसरे अध्याय में, वे उत्तर देना आरम्भ करते हैं — और उनके प्रथम शब्द दर्शन में नहीं, अपितु पूजन में उठते हैं। उपदेश देने से पूर्व वे प्रणाम करते हैं; और फिर उस एक सत्य को उद्घाटित

करते हैं जो समस्त शास्त्र का आधार है: कि मनुष्य-आत्मा का परम कर्तव्य है भगवान् के प्रति प्रेममयी, निष्काम भक्ति।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 2 (द्वितीय अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: दिव्यता और दिव्य सेवा
- प्रमुख वक्ता: पूज्य सूत जी, उग्रश्रवा (प्रथम श्लोक व्यास जी के मुख से)
- प्रमुख श्रोता: शौनक ऋषि तथा नैमिषारण्य की ऋषि-सभा
- मुख्य स्थल: नैमिषारण्य वन, सहस्रवर्षीय यज्ञ-सत्र के समय
- केन्द्रीय विषय: भगवान् वासुदेव के प्रति निष्काम प्रेममयी भक्ति ही आत्मा का परम धर्म; तथा समस्त ज्ञान और कर्म का एकमात्र लक्ष्य भगवान्
- प्रमुख श्लोक-परास: स्कन्ध 1, अध्याय 2, श्लोक 1-34
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पूर्व अध्याय का सन्दर्भ

प्रथम अध्याय में, कलियुग के इस काल में एक दीर्घ यज्ञ के लिए एकत्र हुए नैमिषारण्य के ऋषियों ने सूत जी का सम्मान किया और तीन बातें पूछीं: समस्त जनों के परम कल्याण का एकमात्र अचूक साधन, भगवान् के अवतार का प्रयोजन, और — अब जब श्रीकृष्ण अपने धाम को लौट गये हैं — धर्म ने कहाँ शरण ली है। सूत जी ने उनकी जिज्ञासा प्रसन्नता से ग्रहण की। यह द्वितीय अध्याय उनके उत्तर का आरम्भ है, और यहीं से *भागवत धर्म* — प्रेममयी भक्ति के धर्म — का महान उपदेश खुलता है।

पूज्य सूत जी अपना उत्तर आरम्भ करते हैं

रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा पवित्र ब्राह्मणों का प्रश्न सुनकर आनन्द से भर उठे — क्योंकि उन्होंने धन या स्वर्ग नहीं, अपितु भगवान् के विषय में पूछा था। उन्होंने उनके वचनों का सम्मान किया और प्रसन्न, श्रद्धामय हृदय से बोलना आरम्भ किया (श्लोक 1)।



ऋषियों के पवित्र प्रश्न से आनन्दित होकर पूज्य सूत जी उनके वचनों का सम्मान करते हैं और अपना प्रवचन आरम्भ करते हैं (श्लोक 1)।

किन्तु देखिए, वे पहले क्या करते हैं। कोई साधारण वक्ता उत्तर देने को दौड़ पड़ता। सूत जी इसके स्थान पर प्रणाम अर्पित करते हैं — पहले अपने गुरु शुकदेव जी को, फिर दिव्य ऋषियों और वाणी की देवी को। भागवत में ज्ञान कभी छीना नहीं जाता; वह उन महापुरुषों से नतमस्तक होकर ग्रहण किया जाता है जिन्होंने उसे हमसे पहले धारण किया।

शुकदेव जी को प्रणाम

सूत जी व्यास-पुत्र शुकदेव जी को प्रणाम करते हैं। इस प्रणाम के पीछे एक कोमल कथा है। जब शुकदेव, अभी बालक ही थे, संन्यासी का जीवन अपनाने के लिए घर से चल पड़े — यज्ञोपवीत आदि संस्कारों से पूर्व ही — तब उनके पिता द्वैपायन (वेदव्यास), वियोग की वेदना से अभिभूत होकर, उनके पीछे पुकार उठे, “हे पुत्र!” किन्तु शुकदेव सर्वात्मभाव को प्राप्त हो चुके थे और समस्त प्राणियों के हृदय में उनकी पहुँच थी; अतः मार्ग के वे वृक्ष, जो उनकी उपस्थिति से आपाद-मस्तक भरे थे, उन्होंने ही व्याकुल पिता को उत्तर दिया। उन्हीं सर्वभूत-हृदय-निवासी मुनि को सूत जी प्रणाम करते हैं।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥

*yaṁ pravrajantam anupetam apeta-kṛtyaṁ dvaipāyano viraha-kātara ājuhāva । putreti tan-
mayatayā taravo 'bhinedus taṁ sarva-bhūta-hṛdayaṁ munim ānato 'smi ॥ 2 ॥*

अर्थ: मैं उन सर्वभूत-हृदय-निवासी मुनि शुकदेव को प्रणाम करता हूँ — वह पुत्र, जिसे संस्कारों से पूर्व ही संन्यास के लिए जाते देख वियोग से व्याकुल द्वैपायन ने “हे पुत्र!” कहकर पुकारा, और जिसके स्थान पर उनकी उपस्थिति से पूर्ण वृक्षों ने उत्तर दिया। (स्कन्ध 1, अध्याय 2, श्लोक 2)

तत्पश्चात् सूत जी मुनियों के गुरु शुकदेव जी की शरण लेते हैं — वे, जिन्होंने संसार के घोर अन्धकार को पार करने के इच्छुक भटकते जीवों पर करुणा करके इस परम गुह्य पुराण को प्रकट किया, जो आत्मज्ञान का दीप और समस्त वेदों का सार है (श्लोक 3)। और अन्त में नर-नारायण ऋषियों, वाणी की देवी सरस्वती तथा स्वयं व्यास जी को प्रणाम करके वे भागवत के पाठ की तैयारी करते हैं — वह पाठ जो आत्मा को जन्म-मृत्यु के समस्त चक्र से पार करा देता है (श्लोक 4)।

आत्मा का परम धर्म

अब सूत जी ऋषियों के प्रथम महान प्रश्न का सीधा और सस्नेह उत्तर देते हैं। “हे ऋषियों,” वे कहते हैं, “आपने जो पूछा है, वह पूछकर आपने बहुत अच्छा किया, क्योंकि आपका प्रश्न श्रीकृष्ण से सम्बन्धित है और इसलिए हृदय को पूर्णतया शुद्ध कर देता है” (श्लोक 5)। और फिर वे उस सत्य को कहते हैं जो सम्पूर्ण भागवत का हृदय है।



समस्त मनुष्यों का परम धर्म है इन्द्रियातीत भगवान् के प्रति प्रेममयी भक्ति, जो निष्काम और अखण्ड भाव से अर्पित हो (श्लोक 6)।

प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म — सर्वोच्च कर्तव्य — वही है जिससे इन्द्रियों से परे विराजमान उस अधोक्षज भगवान् के प्रति प्रेममयी भक्ति उत्पन्न होती है। और यह भक्ति, परम होने के लिए, दो लक्षणों से युक्त होनी चाहिए: यह निष्काम हो, केवल भगवान् के लिए, किसी फल की कामना से नहीं; और यह अखण्ड हो, बिना किसी बाधा के प्रवाहित होती रहे। ऐसी भक्ति से ही आत्मा पूर्णतया और परिपूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाती है।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥ ६ ॥

sa vai puṁsām paro dharmo yato bhaktir adhokṣaje । ahaituky apratihātā yayātmā suprasīdati
॥ 6 ॥

अर्थ: समस्त मनुष्यों का वही परम धर्म है जिससे इन्द्रियातीत भगवान् के प्रति प्रेममयी भक्ति जागृत होती है — ऐसी भक्ति जो निष्काम और अखण्ड हो, और जिससे आत्मा परम सन्तुष्टि को प्राप्त होती है। (स्कन्ध 1, अध्याय 2, श्लोक 6)

यही एक श्लोक ऋषियों की “एकमात्र आवश्यक कल्याण” की खोज का उत्तर है। यह न कोई कर्मकाण्ड है, न कोई स्थान, न कोई शर्त — यह स्वयं भक्ति है, निःस्वार्थ भाव से अर्पित। और ऐसी भक्ति कोई निष्फल भावुकता नहीं: भक्ति के अभ्यास द्वारा भगवान् वासुदेव के सम्पर्क से शीघ्र ही दो अमूल्य साथी जन्म लेते हैं — *वैराग्य*, नश्वर के प्रति विरक्ति, और *ज्ञान*, सच्चा आध्यात्मिक बोध — और दोनों बिना किसी पृथक् प्रयास के स्वयं ही प्रकट होते हैं (श्लोक 7)।

जब कर्तव्य केवल श्रम बन जाता है

अब सूत जी एक सचेत कर देने वाली बात कहते हैं। हमारे सारे सावधानी से किये गये धार्मिक और सामाजिक कर्तव्य, चाहे कितने ही यथार्थ हों, अन्ततः निष्फल हैं यदि वे एक कार्य करने में विफल रहें — भगवान् की कथाओं के प्रति प्रेम जगाने में।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥

dharmah svanuṣṭītaḥ puṁsām viṣvaksena-kathāsu yah । notpādayed yadi ratim śrama eva hi kevalam ॥ 8 ॥

अर्थ: मनुष्यों के भलीभाँति सम्पन्न किये गये विहित कर्तव्य भी केवल व्यर्थ श्रम हैं, यदि वे भगवान् विष्वक्सेन (श्रीकृष्ण) की कथाओं के प्रति रुचि उत्पन्न न करें। (स्कन्ध 1, अध्याय 2, श्लोक 8)

तत्पश्चात् वे जीवन के उद्देश्यों का सच्चा क्रम उद्धाटित करते हैं। धन धर्म का लक्ष्य नहीं, अपितु अधिक-से-अधिक पुण्य अर्जित करने का साधन है; इन्द्रिय-भोग भोग का प्रयोजन नहीं; शरीर केवल इसलिए रखा जाता है कि आत्मा किसी उच्चतर वस्तु का अनुसन्धान कर सके। और वह उच्चतम वस्तु है तत्त्व-जिज्ञासा — न कि पुण्य-कर्मों द्वारा सुखद फलों का संचय (श्लोक 9-10)।

एक सत्य, अनेक नाम

तो फिर वह सत्य क्या है? तत्त्ववेत्ता, सूत जी कहते हैं, उसे एक अद्वय तत्त्व कहते हैं — अखण्ड, अद्वितीय — जिसे उसके साक्षात्कार के अनुसार तीन महान नामों से पुकारा जाता है: ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्।

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दते ॥ ११ ॥

vadanti tat tattva-vidas tattvaṁ yaj jñānam advayam । brahmeti paramātmetyeiti bhagavān iti śabdyate ॥ 11 ॥

अर्थ: तत्त्ववेत्ता उस अद्वय तत्त्व को “तत्त्व” कहते हैं; वही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् के रूप में कहा जाता है। (स्कन्ध 1, अध्याय 2, श्लोक 11)

सच्चे और श्रद्धावान् ऋषि उसी तत्त्व का अपने ही हृदय में साक्षात्कार करते हैं, ज्ञान और वैराग्य से युक्त भक्ति द्वारा — यह दर्शन श्रवण से प्राप्त होता है (श्लोक 12)। अतः, सूत जी निष्कर्ष देते हैं, जन अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार जो कर्तव्य करते हैं उनका सच्चा फल केवल यही है: श्रीहरि को प्रसन्न करना (श्लोक 13)।

सुनो, महिमा गाओ, स्मरण करो

इससे एक ऐसा अभ्यास निकलता है जो जितना सरल है उतना ही पूर्ण। एकाग्र और अनन्य मन से भक्तवत्सल भगवान् का निरन्तर श्रवण, कीर्तन, ध्यान और पूजन करते रहना चाहिए (श्लोक 14)। विद्वान्, उन पर निरन्तर ध्यान की तलवार से सुसज्जित होकर, कर्म की कठोर गाँठ को काट डालते हैं। तो फिर, एक बार रस पा लेने पर, कौन उनकी कथाओं में आनन्द न लेगा? (श्लोक 15)

हृदय में विराजमान श्रीकृष्ण

अब सूत जी इस श्रवण की अद्भुत क्रिया का वर्णन करते हैं। तीर्थों में जाने और महापुरुषों की सेवा से भगवान् की कथाओं के प्रति रुचि जागती है (श्लोक 16)। और एक बार वह श्रवण आरम्भ हो जाए, तो भगवान् स्वयं भीतर से हमारी शुद्धि का कार्य ले लेते हैं।



हृदय में विराजमान होकर श्रीकृष्ण स्वयं उस भक्त के समस्त अशुभ का निवारण कर देते हैं जो उनकी महिमा सुनने-गाने में आनन्द लेता है (श्लोक 17)।

श्रीकृष्ण, जिनका श्रवण और कीर्तन स्वयं पुण्यमय है, उन श्रोताओं के हृदय में सुहृद् बनकर विराजते हैं जो उनकी महिमा सुनते हैं; और भीतर से ही वे उनका समस्त अशुभ धो डालते हैं।

शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।

हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥ १७ ॥

śṛṇvatām sva-kathāḥ kṛṣṇaḥ puṇya-śravaṇa-kīrtanaḥ । hṛdy antaḥ stho hy abhadrāṇi vidhunoti suhṛt satām ॥ 17 ॥

अर्थः श्रीकृष्ण — जिनका श्रवण और कीर्तन स्वयं पवित्र है — सत्पुरुषों के सुहृद् रूप में हृदय में विराजमान होकर, उनका समस्त अशुभ धो डालते हैं जो उनकी कथाओं के श्रवण में आनन्द लेते हैं। (स्कन्ध 1, अध्याय 2, श्लोक 17)

दृढ़ भक्ति का उदय

अब सूत जी क्रमशः बताते हैं कि हृदय किस प्रकार रूपान्तरित होता है। जैसे-जैसे भगवान् और उनके भक्तों की नित्य प्रेममयी सेवा से अशुभ लगभग पूर्णतया नष्ट हो जाता है, वैसे-वैसे उत्तमश्लोक भगवान् के प्रति एक दृढ़ और अटल भक्ति उमड़ पड़ती है (श्लोक 18)। तब रज और तम से उत्पन्न विकार — काम, लोभ आदि — मन को बेध नहीं पाते; उनसे मुक्त होकर वह शुद्ध सत्त्व में शान्त स्थित हो जाता है (श्लोक 19)। इस प्रकार प्रसन्न और समस्त सांसारिक आसक्ति से मुक्त मन में भगवान् के वास्तविक स्वरूप का साक्षात् बोध स्वयं ही उदित होता है (श्लोक 20)। और उस दर्शन के क्षण में:



जब भगवान् का भीतर साक्षात्कार होता है, तब हृदय की गाँठ कट जाती है, समस्त संशय मिट जाते हैं, और कर्म की शृंखला टूट जाती है (श्लोक 21)।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥ २१ ॥

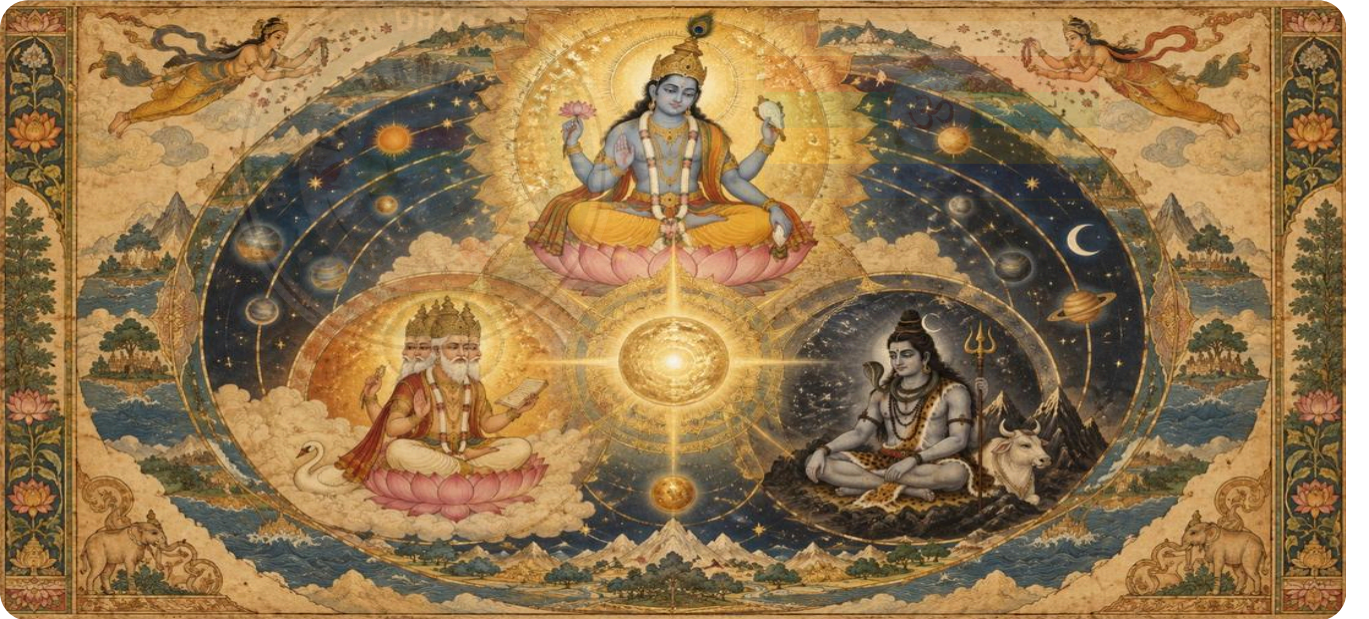
bhidyate hṛdaya-granthiś chidyante sarva-saṁśayāḥ । kṣīyante cāsyā karmāṇi dṛṣṭa evātmanīśvare ॥ 21 ॥

अर्थ: जब भगवान् का अपने ही आत्मा के रूप में साक्षात्कार होता है, तब हृदय की गाँठ कट जाती है, समस्त संशय दूर हो जाते हैं, और कर्मों का सम्पूर्ण संचय क्षीण हो जाता है। (स्कन्ध 1, अध्याय 2, श्लोक 21)

इसीलिए, सूत जी कहते हैं, ज्ञानीजन भगवान् वासुदेव की प्रेममयी भक्ति में ही अपना परम और निरन्तर आनन्द लेते हैं, जो आत्मा को ही शुद्ध कर देती है (श्लोक 22)।

एक परम पुरुष, तीन गुण

अब सूत जी अपने उत्तर को व्यापकतम दृष्टि तक उठाते हैं। यह एक जगत् प्रकृति के तीन गुणों से बुना है — सत्त्व, रज और तम। जगत् की स्थिति, सृष्टि और संहार के लिए वह एक परम पुरुष तीन नाम धारण करता है: विष्णु (हरि) के रूप में वह सत्त्व द्वारा पालन करता है, ब्रह्मा (विरिञ्चि) के रूप में रज द्वारा सृजन करता है, शिव (हर) के रूप में तम द्वारा संहार करता है। फिर भी समस्त प्राणियों का परम कल्याण केवल श्रीहरि से ही प्रवाहित होता है, जिनका स्वरूप शुद्ध, निर्मल सत्त्व है (श्लोक 23)।



वह एक परम पुरुष तीन गुणों के द्वारा विष्णु, ब्रह्मा और शिव के रूप में जगत् का शासन करता है; परम कल्याण श्रीहरि से प्रवाहित होता है, जिनका स्वरूप शुद्ध सत्त्व है (श्लोक 23-24)।

इसके लिए वे एक सरल दृष्टान्त देते हैं। जैसे काष्ठ जड़ है, उससे उठता धुआँ सूक्ष्मतर, और धुएँ के भीतर की अग्नि उससे भी सूक्ष्म और उच्चतर — और अग्नि ही पवित्र आहुतियों को वहन करती है — वैसे ही तम से रज श्रेष्ठ है, और रज से सत्त्व; और सत्त्व से ही भगवान् का साक्षात्कार होता है (श्लोक 24)। इसीलिए प्राचीन काल में मुक्ति के इच्छुक ऋषियों ने सत्त्व-स्वरूप भगवान् विष्णु की उपासना की, और जो उनके मार्ग पर चलते हैं वे आज भी परम कल्याण के योग्य हो जाते हैं (श्लोक 25)। जो मुक्ति चाहते हैं वे नारायण के सौम्य रूपों की उपासना करते हैं; जो रज और तम से अभिभूत होकर धन, शक्ति और सन्तान चाहते हैं वे अपने ही स्वभाव जैसे पितरों और भूत-प्रेतों की उपासना करते हैं (श्लोक 26-27)।

सब कुछ वासुदेव में पर्यवासेत होता है

तत्पश्चात् समस्त भागवत की एक अत्यन्त व्यापक घोषणा आती है — एक ही सत्य, जो किसी टेक की भाँति दोहराया जाता है जब तक वह विचार और कर्म के समस्त क्षितिज को भर न दे।

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ।

वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८ ॥

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ।

वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥ २९ ॥

vāsudeva-parā vedā vāsudeva-parā makhāḥ । vāsudeva-parā yogā vāsudeva-parāḥ kriyāḥ ॥ 28 ॥
vāsudeva-param jñānaṁ vāsudeva-param tapaḥ । vāsudeva-paro dharmo vāsudeva-parā gatiḥ ॥
29 ॥

अर्थ: वेद वासुदेव में पर्यवसित होते हैं; यज्ञ वासुदेव के लिए हैं; योग वासुदेव तक ले जाते हैं; समस्त क्रियाएँ वासुदेव में समाप्त होती हैं। ज्ञान वासुदेव में पर्यवसित होता है; तप वासुदेव के लिए है; धर्म का लक्ष्य वासुदेव है; और वासुदेव ही सबकी परम गति है। (स्कन्ध 1, अध्याय 2, श्लोक 28-29)

आध्यात्मिक जीवन का प्रत्येक मार्ग — अध्ययन, पूजन, ध्यान, कर्म, ज्ञान, तप, धर्म — अपने अन्त तक पहुँचकर उसी एक दिव्य पुरुष का मार्ग है। शास्त्र अनेक लक्ष्यों का बिखराव नहीं, अपितु अनेक ओर से देखा गया एक ही लक्ष्य है।

जगत् के कल्याण हेतु भगवान् के अवतार

अन्त में सूत जी ऋषियों के दूसरे प्रश्न — भगवान् क्यों अवतरित होते हैं — की ओर मुड़ते हैं और उसकी नींव रखते हैं। यद्यपि परम पुरुष स्वयं सदा प्रकृति और उसके तीन गुणों से परे हैं, फिर भी उन्होंने ही अपनी माया द्वारा गुणों के इस जगत् को प्रकट किया, जो प्रतीति में सत्य और तत्त्वतः असत् है (श्लोक 30)। उन गुणों में प्रविष्ट होकर वे उनसे युक्त-से प्रतीत होते हैं, यद्यपि वस्तुतः वे अखण्ड चैतन्य हैं (श्लोक 31)। जैसे एक ही अग्नि अनेक काष्ठों में स्थित होकर अनेक-सी दिखती है, वैसे ही जगत् की वह एक आत्मा अनेक प्राणियों के अनेक शरीरों में अनेक-सी प्रतीत होती है, और प्रत्येक के द्वारा उसके योग्य विषयों का उपभोग करती है (श्लोक 32-33)। और फिर यह अध्याय उस सत्य पर समाप्त होता है जो अगले अध्याय को खोलेगा:

4. श्रवण इसलिए शुद्ध करता है क्योंकि भगवान् भीतर से कार्य करते हैं। हृदय में विराजमान श्रीकृष्ण स्वयं उन भक्तों का अशुभ धोते हैं जो उनकी महिमा सुनने में आनन्द लेते हैं (श्लोक 17)।

5. साक्षात्कार हृदय की गाँठ काट देता है। जब भगवान् का भीतर दर्शन होता है, तब अहंकार की गाँठ कट जाती है, संशय मिटते हैं, और कर्म की शृंखला टूट जाती है (श्लोक 21) — यही वह फल है जिसकी ओर भक्ति का क्रमिक उदय (श्लोक 18-20) ले जाता है।

6. समस्त मार्ग और समस्त ज्ञान वासुदेव में पर्यवसित होते हैं। वेद, यज्ञ, योग, तप, धर्म और स्वयं परम गति — सब एक ही भगवान् में मिलते हैं (श्लोक 28-29)।

7. वह एक भगवान् जगत् का शासन करता और उसके कल्याण हेतु अवतरित होता है। तीन गुणों द्वारा वह विष्णु, ब्रह्मा और शिव के रूप में पालन, सृजन और संहार करता है (श्लोक 23); और प्रेमवश वह अपने लीला-अवतार धारण करके समस्त प्राणियों की रक्षा करता है (श्लोक 34)।

एक भक्तिमयी चिन्तन

इस अध्याय के केन्द्र में एक शान्त उलटफेर है। हम आध्यात्मिक जीवन को अपने कर्म से मापने के अभ्यस्त हैं — कितनी शुद्धता से पालन किया, कितना पाया। सूत जी एक भिन्न मापदण्ड रखते हैं: क्या हमारा साधन प्रेम जगाने लगा है? पूर्णता से किन्तु शुष्कता से किया गया कर्तव्य, वे कहते हैं, केवल श्रम है; किन्तु वह हृदय जो भगवान् की कथाओं में आनन्द लेने लगा है, उसने वह एक वस्तु पा ली जो पाने योग्य है। और इस समस्त प्रवचन का सर्वाधिक सान्त्वनादायक वचन यह है कि यह रूपान्तर केवल हम पर नहीं छोड़ा गया। जब हम केवल उन्हें सुनते और स्मरण करते हैं, तब भगवान् भीतर आ बसते हैं और गहरी शुद्धि स्वयं कर देते हैं। हमारा भाग छोटा है — सुनना, महिमा गाना, हृदय को उनकी ओर मोड़ते रहना। उनका भाग है — भीतर से उस गाँठ को खोलना जिसे हम अपने हाथों कभी न खोल पाते।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज भगवान् की स्तुति की कोई एक छोटी कथा या श्लोक चुनकर धीरे-धीरे सुनिए या पढ़िए — समाप्त करने के लिए नहीं, अपितु उसका रस लेने के लिए। ऐसा करते समय, बिना किसी फल की कामना के, उसे मन ही मन अर्पित कीजिए — श्लोक 6 के भाव में: भक्ति स्वयं के लिए। फिर दिनभर भगवान् का कोई एक नाम शान्ति से धारण कीजिए, श्लोक 17 के वचन पर विश्वास करते हुए — कि जो भीतर विराजमान हैं वे पहले से ही उस अशुभ को धो रहे हैं जिस तक हम नहीं पहुँच सकते।

उपसंहार

इस प्रकार श्रीमद्भागवत का द्वितीय अध्याय समाप्त होता है, इस महान पुराण के प्रथम स्कन्ध में, जिसे आत्मज्ञानी परमहंस-संहिता कहते हैं। इस अध्याय में, श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 2 में, पूज्य सूत जी भागवत धर्म का सार उद्घाटित करते हैं: कि आत्मा का परम कर्तव्य है इन्द्रियातीत भगवान् के प्रति निष्काम, अखण्ड भक्ति; कि श्रीकृष्ण का श्रवण हृदय को शुद्ध करता है क्योंकि वे भीतर से कार्य करते हैं; कि जब उनका अन्ततः दर्शन होता है, तब हृदय की गाँठ कट जाती है; और कि प्रत्येक मार्ग, शास्त्र और लक्ष्य उस एक भगवान् वासुदेव में पर्यवसित

होता है, जो प्रेमवश समस्त प्राणियों की रक्षा हेतु जगत् में अवतरित होते हैं। अब उन अवतारों की कथा के लिए भूमिका तैयार है, जिसे अगला अध्याय कहना आरम्भ करेगा। हम भी नैमिषारण्य के ऋषियों की भाँति अपने दिनों को इससे मापना सीखें कि हमने कितना किया — इससे नहीं, अपितु इससे कि हमने उन्हें कितना प्रेम करना सीखा।

श्रीमद्भागवत की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम स्कन्ध, द्वितीय अध्याय, पृष्ठ 4-7।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट। पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र जी के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-1-adhyay-2-divyata-aur-divya-seva.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट